स्वास्थ्य समाचार पत्रिका

(मासिक)

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

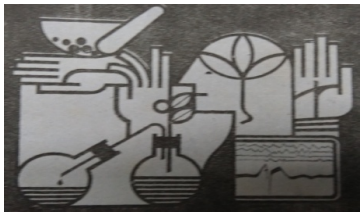

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।।

प्रकाशक
आयुर्वेद संकाय,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पिन – 221005

अंक–4 अक्टूबर–2017

संरक्षक

प्रो0 विजय कुमार शुक्ल
निदेशक,
चिकित्सा विज्ञान संस्थान

प्रधान सम्पादक

प्रो0 यामिनी भूषण त्रिपाठी
संकाय प्रमुख,
आयुर्वेद संकाय

सम्पादक

प्रो0 हरि हृदय अवस्थी

सह–सम्पादक मण्डल

डॉ0 अभिनव
डॉ0 अनुराग पाण्डेय
डॉ0 कंचन चौधरी
डॉ0 संजीव कुमार
डॉ0 वैभव जायसवाल

सम्पादक सचिव

डॉ0 रामजीत विश्वकर्मा
श्रीमती चन्दा श्रीवास्तव

सम्पादकीय

प्रिय पाठकों,

सादर नमस्कार

आपको यह जानकर परम हर्ष होगा कि हमारे कर्मठ संकाय प्रमुख, प्रो0 यामिनी भूषण त्रिपाठी जी की दूरदर्शिता, कुशल नेतृत्व एवं सद्प्रयासों से ''स्वास्थ्य समाचार पत्रिका (मासिक) के अंक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वेब पेज पर निम्न लिंक पर http://www.bhu.ac.in/research_pub/swaasthya-patrika/ उपलब्ध हैं उसको वहां से डाउनलोड किया जा सकता है। इससे आयुर्वेद में रूचि रखने वाले देश – विदेश के पाठकों में आयुर्वेद का प्रचार एवं प्रसार होगा और आयुर्वेद के सिद्धान्तों का अनुसरण कर पाठक अपने को अधिक स्वस्थ एवं ऊर्जावान रख सकेंगें। आगे के अंक भी वेब पेज पर उपलब्ध होंगें।

आयुर्वेद में अग्नि की ही चिकित्सा की जाती है और अग्नि के शान्त होने पर मृत्यु हो जाती है। सभी अग्नियां जठराग्नि पर निर्भर करती है। इसी को ध्यान में रखकर यह अंक–4 अक्टुबर 2017 भी ''पाचन तंत्र एवं अग्नि'' पर आधारित है। मैं सभी विद्वान लेखकों का आभारी हूँ, जिन्होंने जनमानस हेतु दुरूह विषय को सरल एवं ग्राह्य भाषा में लिखा है।

जय आयुर्वेद, जय हिन्द!

प्रो0 हरि हृदय अवस्थी

अग्नि का स्वास्थ्य मे महत्व

डॉ0 सौरभ यादव जे.आर द्वीतीय वर्ष डॉ0 वन्दना वर्मा एम.डी, पी.एच.डी.

मानव के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये अग्नि का साम्यावस्था मे होना अत्यंत महत्वपूर्ण है यदि यह अग्नि विकृत हो जाती है तो नाना प्रकार की व्याधियो को उत्पन्न करती है जीवित व्यक्ति पंचमहाभूत से बना होता हैं और अग्नि भी उसका एक भाग हैं यह अग्नि पित्त के अंतर्गत समाहित होती है और पाचन, पोषण आदि कार्यो को सम्पादित करती है।

अग्नि के प्रकार– आयुर्वेद मे अग्नि १३ प्रकार की बताई गयी है

१.जठराग्नि– इसका प्रमुख कार्य जठर में उपस्थित पंचभौतिक आहार का पाचन करना है।

२.भूताग्नि– यह अग्नि जठराग्नि द्वारा पचित आहार के पृथक –२ महाभूत को शरीर की कोशिकाओ तक ले जाती है इसकी संख्या पांच बताई गयी है।

३.धात्वाग्नि– धात्वाग्नि का प्रमुख कार्य महाभूतो के पृथक पृथक घटक से नए तत्वों का निर्माण कर धातु को पोषण देना है।

चिकित्सा की दृष्टि से भी अग्नि को चार भागो मे विभाजित किया गया है

अग्नि	अग्नि स्थिति	दोष	रोग
विषमाग्नि	अग्नि की इस अवस्था में आहार पाचन कभी शीघ्रता से या कभी विलंब से होता है	वात दोष के कारण	ग्रहणी रोग, अर्श
मंदाग्नि	अल्प मात्रा में किये गए आहार का पाचन न होना	कफ दोष के कारण	अपच, अम्लपित, अतिसार
तीक्ष्णाग्नि	गुरु एवं अधिक मात्रा में ग्रहण किये आहार का अतिशीघ्र पाचन	पित्त दोष के कारण	भस्मक रोग
समाग्नि	ग्रहण किये गये अन्न का सम्यक रूप से पाचन	तीनों दोषों की सम समावस्था से	चिरकालीन स्वास्थ्यावस्था

अतः समयानुसार एवं मात्रापूर्वक आहार ग्रहण करना चाहिए अन्यथा अमात्रापूर्वक और अकाल आहार अग्नि को विकृत कर नाना प्रकार की व्याधियो को उत्पन्न करता है और यदि व्यक्ति मानसिक तनाव, अधिक चिंता, भयादि से ग्रस्त है तब भी अग्नि विकृत होकर नाना प्रकार के मानसिक रोगों को उत्पन्न कर देती है

ऋतु के अनुसार अग्नि की स्थिति एवं आहार स्वास्थ्य की रक्षा के लिए व्यक्ति को ऋतु के अनुसार नीचे तालिका में बताये गये निम्न नियमो का पालन करना चाहिए

ऋतु	**अग्नि स्थिति**	**आहार**	**निषेध**
हेमन्त ऋतु	अग्नि की प्रबल स्थिति होने के कारण अधिक मात्रा में आहार ग्रहण करना चाहिए	स्निग्ध, अम्ल, लवण रस युक्त आहार, मांसरस, मधु, दुग्ध, दही, मावा व गन्ने के रस से बनी खीर और नये चावल आदि का सेवन एवं उष्ण जलपान	कटु, तिक्त, कषाय रस, लघु अल्प आहार एवं सत्तु
शिशिर ऋतु	हेमन्त के समान	हेमन्त के समान	हेमन्त के समान
वसंत ऋतु	अग्नि मंद हो जाती है जो सभी रोगों	यव,जौ,सीधु,अंगूर से निर्मित सुरा एवं शौच कर्म में गर्म जल का	गुरु, अम्ल, स्निग्ध पदार्थो का सेवन, मधुर

	का कारण मानी गयी है	सेवन (पीने के लिये नहीं)	अन्नपान एवं दिन में सोना
ग्रीष्म ऋतु	विषमाग्नि हो जाती है	मधुर, शीत द्रव्य, शर्करा युक्त सत्तु, घृत दुग्ध युक्त शालि चावल	नमकीन,खट्टे,अधिक मसाले युक्त आहार मदिरा, अम्ल, लवण, कटु रस युक्त अन्नपान, व्यायाम एवं मैथुन
वर्षा ऋतु	जठराग्नि दुर्बल हो जाती है	जौ, गेंहू, चावल, मांसरस (जांगल) अम्ल, लवण, स्नेह युक्त आहार, मधु (अत्यधिक हितकारी)	उदमंथ (सत्तु), दिन में सोना, ओस में शयन, आतप सेवन एवं मैथुन
शरद ऋतु	जठराग्नि तीव्र हो जाती है	जौ, गेहू, यव, शालि चावल, मधुर, शीत द्रव्य एवं विशेषतः तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घ्रतपान	वसा, तेल, क्षार, एवं दिन में सोना

स्वास्थ्य रक्षा में अग्नि का महत्व अग्नि के द्वारा ही संपूर्ण शरीर में चयापचय आदि की क्रियायें संपन्न होती है अतः अग्नि बल के अनुसार आहार ग्रहण करने पर व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ के साथ दीर्घायु को प्राप्त करता है।

अग्नि तथा पित्त में साधर्म्य – वैधर्म्य डॉ0 नरेन्द्र शंकर त्रिपाठी, क्रिया शारीर

अग्नि एक व्यापक शब्द हैं। भारतीय दर्शन एवं साहित्य (वैदिक काल) में वर्णित पंचमहाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी) में अग्नि महाभूत मध्य में स्थित (तीसरा) है। ऐसा लगता है कि मेन्डलीफ आवर्त सारणी से भी पहले से भारतीय दार्शनिकों ने परमाणुओं/महाभूतों को उनके परमाणु भार तथा वर्तमान में बढ़ते हुए परमाणु क्रमांक के आधार पर ही वर्गीकृत कर रखा है। इस क्रम में यदि देखा जाय तो अग्नि महाभूत से हल्का वायु महाभूत तथा उससे भी हल्का आकाश महाभूत है आकाश महाभूत सबसे हल्का है। यहां तक कहा जा सकता है कि आकाश महाभूत का न तो परमाणु भार पता है न ही उसका परमाणु क्रमांक। इसलिये आकाश महाभूत सबसे हल्का महाभूत है। इसी प्रकार से अग्नि से गुरू जल तथा जल से गुरू पृथ्वी महाभूत है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि आकाश सबसे हल्का तथा पृथ्वी सबसे भारी महाभूत है।

सभी द्रव्य पांचभौतिक हैं इसलिये अग्नि भी सर्वत्र व्याप्त ही नहीं बल्कि इस ब्रह्माण्ड में सर्व प्रमुखता से व्याप्त है क्योंकि यज्ञ एवं दैनिक उपासना आदि में अग्नि प्रज्वलन का अपना महत्व है। यज्ञ में दी गयी आहुतियां अग्नि के द्वारा ही देवताओं के ग्रहण योग्य बनाई जाती है क्योंकि अग्नि ही रासायनिक परिवर्तन के द्वारा ही और लघुता उत्पन्न करता है और आहुति देवताओं का आहार बन जाता है जिससे देवता सबल तथा प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार से अग्नि हमारे शरीर के लिय भी उपयोगी है।

ऋग्वेद में मनुष्य के भीतर भी अग्नि की सत्ता बताई गयी है। आचार्य सुश्रुत ने स्वास्थ्य की परिभाषा करते हुये कहा है कि स्वस्थ्य व्यक्ति वह है जिसमें दोष, धातु एवं मल के साथ–साथ अग्नि भी सामान्य अवस्था में हो। अर्थात दोष धातु और मल के साथ–साथ अग्नि की साम्यावस्था स्वस्थ रहने के लिये आवश्यक है। विभिन्न आयुर्वेदिक आचार्यों ने अग्नि तथा पित्त को समानार्थक माना है। जबकि आचार्य चरक ने अग्नि को पित्त के अन्दर रहने वाला द्रव्य माना है। अग्नि पित्त के अन्दर रहकर अकुपित तथा कुपित अवस्था में क्रमशः शुभ तथा अशुभ कार्यों का संपादन करती है।

क0 सं0	गुण/ लक्षण	अग्नि	पित्त
1	द्रव्य	पंचमहाभूत कारक द्रव्य	दोष (त्रिदोष) कार्य द्रव्य
2	भेद	अ. 13 (पंच महाभूताग्नि+सप्त धात्वग्नि+जठराग्नि) 04 (समाग्नि, विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, मन्दाग्नि)	05 (पाचक, रंजक, साधक, भ्राजक, आलोचक)
3	गति	उर्ध्वग	अधोग
4	संगठन	आग्नेय (अग्नि प्रधान)	अग्नि एवं जल
5	स्थान	पित्तान्तर्गत	स्वेद, रस, लसीका, रूधिर, आमाशय
6	गुण	उष्णता, लघुता, खरता, सत्व प्रधान	सस्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कटु (अविदग्धावस्था में), अम्ल (विदग्धावस्था में), विस्र, पीत, नील, सत्व प्रधान
7	कर्म	दहन, पाचन, दर्शन, शारीरिक उष्मा/तापमान, प्राकृतिक वर्ण, शौय, हर्ष, प्रसाद, आरोग्य, सुख का कारक	दर्शन, पाक, उष्मा/तापमान, क्षुधा, तृष्णा, देहमार्दवं, प्रभा, प्रसाद, मेधा, शौर्य, रूचि।

अग्नि की साम्यावस्था के लिये क्या करें क्या न करें

डॉ0 सोनम अग्रवाल एवं प्रो0 संगीता गहलोत, क्रिया शारीर विभाग

देह के निर्माण करने, संवर्धन करने, शरीर को क्षीण होने से रोकने तथा शरीर की शक्ति बनाये रखने के लिये आहार ही सर्वाधिक आवश्यक है किन्तु आहार के यह सभी गुण व्यर्थ है यदि उसका सम्यक् पाचन न हो पाये अर्थात अन्न देह की पुष्टि अग्नि की सहायता से ही कर सकता है। अतिपौष्टिक अन्न का भी सम्यक पाचन होता रहे तो वह शरीर के लिये हानिकारक नहीं होता है किन्तु अग्नि के सम्यक नहीं होने पर पौष्टिक अन्न भी आमद्रव्य या विषद्रव्य के रूप में शरीर में व्याधियां उत्पन्न करते हैं।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ जायते शरीर में होने वाली सभी प्रकार की व्याधियों का मूल कारण अग्नि का मन्द होना है, इसलिये स्वस्थ जीवन के इच्छुक व्यक्ति को अग्नि की रक्षा करने का सदैव प्रयत्न करना चाहिये। अग्नि शरीर की सम्पूर्ण चयापचयिक क्रियाओं को सम्पादित करती है। अग्नि चयापचयिक क्रिया के अनुसार चार प्रकार की होती है – समाग्नि, मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, विषमाग्नि। समाग्नि श्रेष्ठ एवं स्वस्थ जीवन का मूल होती है। अग्नि और आहार वस्तुतः एक दूसरे की अपेक्षा रखते है जिस प्रकार आहार का सम्यक पाचन अग्नि पर निर्भर है उसी प्रकार अग्नि की विद्यमानता के लिये सम्यक आहार अति आवश्यक है। अतः नित्यप्रतिदिन खाद्य, पेय, लेह्य, चौष्य आदि रूप में ईंन्धन द्रव्य प्रदान किये जाने चाहिये ताकि अग्नि अधिष्ठान प्रज्वलित रह सके। अग्नि का देह में स्वस्थ रूप से यथावत बने रहना आहार पर निर्भर करता है, अग्नि का संरक्षण हमारे दैनिक भोजन पर निर्भर करता है। भोजन यदि देह

और मन के अनुकूल है, उचित समय पर, नियत मात्रा में और विधिविधान से किया जाये तो अग्नि के विकृत होने का भय नहीं रहता इसलिये सम्यक आहार के सेवन से अग्नि को सम रखने का प्रयत्न करना चाहिये। अतः सामान्य नियम निम्न है –

क्या करें –

- समय पर भोजन करना।
- अपनी अग्नि के अनुसार मात्रा युक्त आहार का सेवन करें। भोजन के पश्चात शरीर की क्रियाकलापो जैसे उठने, बैठने, बोलने, हंसने इत्यादि क्रियाओं में बाधा न हो, उदर व पार्श्व में दबाव न पड़े, भोजन का सम्यक पाचन हो जाय, ये सभी मात्रायुक्त आहार के लक्षण है।
- पहले सेवन किये हुये भोजन के पाचन के पश्चात ही भोजन करें।
- ऋतु के अनुसार भोजन का सेवन करें जैसे– बसंत ऋतु में लघु आहार का सेवन करें तथा हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में गुरू पदार्थों का सेवन करें।
- उष्ण स्निग्ध भोजन का सेवन करें।
- व्यायाम और निद्रा का सम्यक भोजन करें।
- भोजन हमेशा स्वच्छ स्थान पर बैठकर करें।
- भोजन मन लगाकर करें तथा भोजन में कमियां न निकालें।

क्या न करें –

- गरिष्ठ पदार्थो का अत्यधिक सेवन न करें।
- अध्यशन (भोजन करने के पश्चात पहले भोजन के पचे बिना पुनः भोजन करना), विषमाशन (कभी अत्यधिक मात्रा में कभी कम मात्रा में भोजन करना, समय का अतिक्रमण), विरूद्धाहार (जैसे दुग्ध के साथ अम्ल पदार्थ एवं मछली के साथ दुग्ध) इत्यादि का सेवन ना करें।
- चिन्ता, शोक, भय, क्रोध इत्यादि मानसिक भावों से बचे।
- भोजन करते समय न अत्यधिक बातें न करे और न अत्यधिक हंसें।
- अत्यधिक धीरे–धीरे या जल्दी–जल्दी भोजन का सेवन न करें।
- यदि किसी कारणवश दिन में किया हुआ भोजन रात्रि तक नहीं पचा हो तो रात्रि में भोजन कर सकते है। किन्तु रात्रि के भोजन के जीर्ण न होने पर दिन में भोजन नहीं करना चाहिये।
- भोजन करने के तुरन्त पश्चात् शयन ना करें।
- जल का सेवन न अत्यधिक मात्रा में और न कम मात्रा में करें। भोजन के अन्त में जल का सेवन नहीं करना चाहिये।
- रात्रि में दही का सेवन ना करें। दही का सेवन शर्करा, घी, मधु, मूंग यूष या आमलक के साथ करें।
- भूख और प्यास के वेग को धारण न करें।

उपयुक्त सभी नियमों के पालन से अग्नि सम अवस्था में रहती है तथा व्यक्ति स्वस्थ रहता है।

अग्नि साम्य स्थापन हेतु आहार नियम एवं योग प्रक्रियाएं

डॉ. दाता राम (जूनियर रेजिडेंट II), डॉ नीरू नत्थानी (एसोसिएट प्रोफेसर)
स्वस्थवृत्त एवं योग विभाग

जिस प्रकार सूर्य की ऊर्जा (अग्नि) के बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नहीं है, ठीक उसी प्रकार शरीर में अग्नि तत्व के बिना जीवन संभव नहीं है। आयुर्वेद के अनुसार प्रत्येक जीव का

शरीर आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से मिलकर बना है और प्रत्येक की साम्य स्थिति ही स्वस्थ जीवन प्रदान करती है। अग्नि तत्व केवल भोजन पाचन ही नहीं करता अपितु शरीर का तापक्रम, शरीर का स्वाभाविक वर्ण बने रहना, नेत्रों से देखना, पराक्रम, भय, क्रोध, प्रसन्नता आदि का सन्तुलन अग्नि के अधीन रहता है।

सामान्यतः अग्नि के चार प्रकार बताए गये हैं– सम अग्निः उचित रूप में किये गये भोजन का पाक कर धातुओं (रस, रक्त आदि) को सम रूप में बनाये रखती है। विषम अग्निः यह भोजन का विषम पाचन करती है और धातुओं को भी विषम करती है। तीक्ष्ण अग्निः अल्प भोजन करने वालों की धातुओं को शोषित कर लेती है। मन्द अग्निः सभी प्रकार के अन्न को न पचाते हुए विदाह उत्पन्न करती है। अग्नि को सम रखने के लिए स्वस्थवृत्त की दृष्टि से आहार सम्बन्धी निम्न नियमों का पालन एवं यौगिक क्रियाएं महत्वपूर्ण हैं।

आहार सम्बन्धी नियम :

1. प्रतिदिन सेवन योग्य भोजन– जो आहार करने वाले की प्रकृति में बाधा न पहुंचाए और उचित समय पर पच जाए।
2. उष्ण आहार सेवन– अग्नि को तीव्र करता है, भोजन का शीघ्र पाचन तथा कफ का शोषण करता है।
3. स्निग्ध आहार– जारण शक्ति तीव्र करता है, शरीर की बल वृद्धि करता है।
4. मात्रावत् आहार– बिना कष्ट के पच जाता है, अग्नि मन्दता से बचाता है।
5. जीर्ण होने पर भोजन ग्रहण – प्राकृत रूप से, समय पर भूख उत्पन्न करता है।
6. भोजन को अति शीघ्रता से अथवा अधिक विलम्ब से ग्रहण नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से विषम पाक होता है।
7. भोजन करते समय सर्वप्रथम नमक व अदरख का भक्षण करना हितकर है, क्योंकि यह अग्नि दीपन एवं रुचिकर होता है।
8. अग्नि की मन्दता को दूर करने के लिए हींग, कालीमिर्च, इलायची, सौंफ, अदरख का प्रयोग भोजन पकाने में करना चाहिए। अनार, पपीता, सन्तरा, सेब, नीबू आदि ताजे फलों का प्रयोग अग्नि बढ़ाकर भोजन का उचित पाक करते हैं।

यौगिक प्रक्रियाएं :

निम्न यौगिक क्रियाएं अग्नि को साम्य अवस्था में लाने में सहयोग करती हैं। इन यौगिक क्रियाओं का अभ्यास शरीर की क्षमतानुसार एवं योग्य प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए। वज्रासन, मण्डूक आसन, कटि चालन, सूर्य भेदी प्राणायाम, उड्डियान बन्ध, अग्निसार क्रिया, मणिपूर चक्र पर ध्यान।इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति को स्वस्थ रखने में अग्नि की साम्यावस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अग्नि को सम रखने के लिए आयुर्वेद के आहार सम्बन्धी नियमों का पालन एवं साथ में यौगिक क्रियाओं का अभ्यास अत्यन्त उपयोगी है। यह अग्नि विकार को उत्पन्न होने से रोकता है।

अग्नि परीक्षा या अग्निबल परीक्षा

डॉ0 पी0 एस0 ब्याडगी एवं जितेन्द्र कुमार मौर्य, विकृति विज्ञान विभाग

मानव स्वास्थ्य में अग्नि का बहुत महत्वपर्ण स्थान है। क्योंकि अन्न का पाचन अग्नि करती है। अन्न का पाचन सही से होगा तो रस रक्तादि धातुएं सही मात्रा में बनेगी। अग्नि

चार प्रकार की होती है। वायुदोष के कारण विषमाग्रि, पित्त से तीक्ष्णाग्नि और श्लेष्मदोष से मन्दाग्नि होती है। जब सब दोष समान होते है तो वह चौथी 'समाग्नि' है।

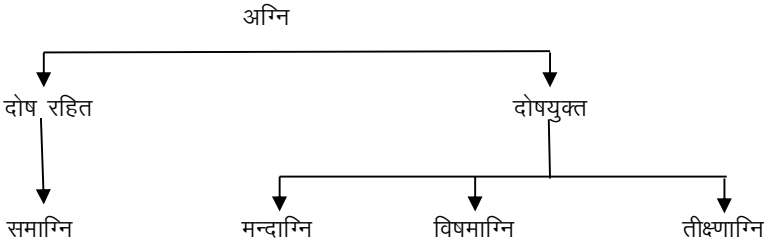

समाग्नि – समाग्नि वह है जो भुक्त अन्न को उचित समय में पचा देती है, ऐसा दोषों के समानता के कारण होता है।

विषमाग्नि – विषम अग्नि वह है जो युक्त अन्न का कभी उचित प्रकार से पाचन कारती है और कभी आध्मान, शूल, उदावर्त, अतिसार, जठरगौरव, गुड़गुड़ायन और प्रवाहण अर्थात कुन्थन उत्पन्न करने के बाद अन्न का पाचन करती है।

तीक्ष्णाग्नि – तीक्ष्ण अग्नि वह है जो अधिक मात्रा में खाये हुए उपयुक्त अन्न को शीघ्र पचा देती है। जिसके परिणामस्वरूप शीघ्र पाक होने पर गलशोष, तालुशोष, ओष्ठशोष, दाह और सन्ताप उत्पन्न करती है।

मन्दाग्नि – मन्द अग्नि अल्पमात्रा में खाये हुए उपयुक्त अन्न को भी उदर में भारीपन, शिर में भारीपन, श्वास, कास, प्रसेक, छर्दि, गात्रसदन उत्पन्न कर अन्न को विलम्ब से पचाता है।

विषम अग्नि वातिक विकारों को, तीक्ष्णाग्नि पित्तज व्याधियों और मन्दाग्नि कफ जन्य रोगों को जन्म देती है।

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान में कहा गया है कि विषमाग्नि आहार को विषम रूप में पकाती हुई धातुओं को विषम बनाती है। तीक्ष्णाग्नि अल्प भोजन करने वाले व्यक्तियों की धातुओं को शोषण करती है। समाग्नि वह होता है जो उचित मात्रा में सेवन किए आहार को पकाकर धातुओं को समरूप में बनाए रखती है। दुर्बल अर्थात् मन्दाग्नि सभी प्रकार के खाए हुए आहार में विदाह उत्पन्न करती है। तथा विदाहयुक्त अन्न को वमन या विरेचन द्वारा बाहर निकालती है।

अतः उपर्युक्त अग्नियों में से समाग्नि की रक्षा करनी चाहिए जिससे वह जैसी है वैसी बनी रहे। विषमाग्नि के उपचार में स्निग्ध, अम्ल, लवण द्रव्य तथा क्रिया विशेषों का प्रयोग करें। तीक्ष्णाग्नि से पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा में मधुर, स्निग्ध, शीत द्रव्यों एवं विरेचकों का प्रयोग किया जाता है। तीक्ष्णाग्नि में भी यही उपचार किया जाता है, विशेषकर इसमें भैंस का दूध, दही और घृत का अधिक प्रयोग होता है और मन्दाग्नि में कटु, तिक्त, कषाय रसों एवं वमन द्रव्यों का उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है।

उपवासः डा0 प्रियदर्शनी तिवारी, असिस्टेंट प्रोफेसर, विकृति विज्ञान

उपवास – स्वेच्छा से कुछ समयावधि के लिए सभी भोजन या पेय पदार्थ या दोनों पर संयम करना है।

संस्कृत में 'व्रत' का अर्थ है दृढ़ संकल्प और उपवास का अर्थ है ईश्वर के पास। उपवास या तो संपूर्ण हो सकता है, या आंशिक और लंबे समय तक अथवा यह कुछ अवधि में रूक–रूक कर भी हो सकता है। स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु 'उपवास' उपचार का महत्वपूर्ण साधन है। उपवास करने की मानसिक तैयारी होना आवश्यक है। उपवास की अवधि रोगी की उम्र, रोग की प्रकृति और पूर्व में किये गये औषधियों के प्रयोग पर निर्भर होती है। उपवास पानी, रस

या कच्ची सब्जियों के रस के साथ हो सकता है। सुरक्षित और सबसे प्रभावी विधि नींबू के रस से उपवास करना है। उपवास के दौरान शरीर में जमा अपशिष्ट पदार्थो को जलाकर बाहर निकाला जाता है, रस पीकर इस प्रक्रिया में लाभ पा सकते हैं। रसों में शर्करा हृदय को मजबूत करती है, इसलिए रस द्वारा उपवास, उसका सबसे अच्छा तरीका है। सभी रस, पीने से तुरंत पहले ताजा फल से तैयार किए जाने चाहिए। उपवास की शुरूआत करने से पूर्व में आंत को पूरी तरह खाली करना चाहिए ताकि रूग्ण को शरीर में शेष अपशिष्ट से उत्पन्न अपघटित पदार्थ से परेशानी न हो। तरल पदार्थ की मात्रा लगभग छह से आठ गिलास होना चाहिए। उपवास के काल में शरीर में संचित विषाक्त अपशिष्ट पदार्थो को नष्ट करने में शरीर की बहुत ऊर्जा खर्च होती है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि उपवास के दौरान रोगी को शारीरिक और मानसिक विश्राम करना चाहिए। उपवास तोड़ने के समय लघु भोजन ले जैसे मंड, पेया, विलेपि आदि। भोजन की मात्रा कम ले, भोजन को धीरे–धीरे चबा कर खाएं और सामान्य आहार के लिए क्रमिक बदलाव लाये।

उपवास के शारीरिक लाभ और प्रभाव

चिकित्सा शास्त्र ने विभिन्न स्थितियों के लिए चिकित्सा के रूप में उपवास की योजना की है। उपवास करने से वजन घटता है, मधुमेह नियंत्रण में रहता है, पाचन में वृद्धि होती है, कोलेस्ट्रॉल घटता है, उपवास द्वारा अग्नि में वृद्धि होती है जिसे हम विज्ञान की भाषा में निम्नलिखित स्वरूप में समझ सकते हैं, इंसुलिन संवेदनशीलता में वृद्धि के परिणामस्वरूप रक्त की शर्करा व इंसुलिन सांद्रता के स्तर में कमी होती है और रक्त की शर्करा की सहनशीलता में सुधार होता है, ऑक्सिडेटिव तनाव के स्तर में कमी होती है। आक्सीडेटिव और चयापचय तनाव सहित विभिन्न तनावों के प्रतिरोध में वृद्धि और प्रतिरक्षा कार्य में वृद्धि पाई गयी है साथ ही मानसिक शान्ति भी मिलती है। इस तरह उपवास के अनेक शारीरिक एवं मानसिक लाभ होते हैं।

रसशास्त्रीय चिकित्सा एवं शारीर विज्ञान

प्रो0 खेमचन्द शर्मा, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष

डा0 पारूल रानी, अध्येता तृतीय वर्ष

डा0 आशीष कुमार त्रिपाठी अध्येता प्रथम वर्ष

स्नातकोत्तर रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना विभाग,
उत्तराखण्ड आयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकुल परिसर, हरिद्वार।

'दोष धातु मल मूलं हि शरीरम्'

दोष, धातु व मल ही शरीर के मूल हैं। त्रिदोष सिद्धान्त, सप्तधातुओं तथा मल अर्थात् दोष–दूष्य–मल के आधार पर ही शरीर व्यवस्थित है। 'धारणात् धातवः' के अनुसार जो शरीर का धारण व पोषण करती है उसे 'धातु' संज्ञा दी गई है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति के बीजवादी सिद्धान्त से इतर आयुर्वेदीय चिकित्सा क्षेत्रवाद प्रधान है, जिसमें स्वस्थवृत्त व रोग निवारण दोनों प्रयोजनार्थ क्षेत्र (मुख्यतः धातुओं) की साम्यावस्था ही मुख्य उद्देश्य होता है। धातुसाम्य की क्रिया ही आयुर्वेद तन्त्र का प्रयोजन है– ''धातुसाम्यं क्रियाचोक्ता तन्त्रस्यस्य प्रयोजनम्''। धातुओं में वैषम्य ही विकारोत्पत्ति (खवैगुण्यादि से) का प्रधान कारण है, क्योंकि खवैगुण्य ही दोष–दूष्य–सम्मूर्च्छना को पृष्ठभूमि प्रदान करता है। यदि धातुएं सुदृढ़ रहें तो दोष इनमें विकृति नही कर पायेंगे, अतः धातुओं का समुचित पोषण अत्यवाश्यक है।

धातुप्रदोषज विकारों के शमन के सम्बन्ध में विभिन्न रसकल्पों/द्रव्यों का प्रयोग शास्त्र में सहज ही देखने को मिलता है, जैसे –

क्र0 सं0	धातु	प्रयुक्त द्रव्य/औषध
1.	रस	जयमंगल रस, ब्राह्मी रसायन, सारस्वतारिष्ट, खर्जूर, द्राक्षा, काश्मरी आदि।
2.	रक्त	शंखभस्म, प्रवाल पंचामृत, आमलकी, पलाण्डु, भृंगराज।
3.	मांस	बला, नागबला, कदन्ती, अश्वगंधा, शालपर्णी, विदारीकन्द, वराहीकन्द।

4.	मेद	गुग्गुल, शिलाजतु, अमृता, हरीतकी, आरोग्यवर्धनी वटी, कुटकी चूर्ण, तीक्ष्ण लौह भस्म।
5.	अस्थि	लाक्षा, वंशलोचन, त्रैलोक्यचिन्तामणि रस, वातचिन्तामणि रस, योगराज गुग्गुलु, दशमूलाद्य घृत।
6.	मज्जा	वासा, लौह, रजतभस्म, त्रप्वादि लौह।
7.	शुक्र	आत्मगुप्ता, च्यवनप्राशावलेह, मूसली पाक, शिलाजतु, अभ्रक भस्म, वंग भस्म।

अग्निवर्धक द्रव्यों का चिकित्सा में उपादेयता

श्याम सुन्दर, शोध छात्र, डॉ0 भुवाल राम, एसोसिएट प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग

खाये हुए आहार का पाचन तथा शरीर की पुष्टि एवं जीवन के लिए आवश्यक सम्पूर्ण चयापचयात्मक क्रियायें अग्नि व्यापार पर ही निर्भर होती है जैसा कि आचार्य चरक ने चिकित्सा अध्याय में कहा है कि अग्नि की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति पर ही प्राणी का जीवन–मरण निर्भर है क्योंकि अन्न द्वारा देह, धातु, ओज, बल आदि का पोषण होना अग्नि बल (जाठराग्नि, धात्वाग्नि, भूताग्नि) पर ही निर्भर है।

भोजन की अपरिपक्व अवस्था को अजीर्ण कहते हैं जिसका मूल अग्निमान्द्य है। वस्तुतः अधिकांश महास्रोतोगत व्याधियों का मूल अग्निमान्द्य एवं अजीर्ण है, जैसे– आमाजीर्ण, विदिग्धाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, रसेसाजीर्ण, दिनपाकी अजीर्ण तथा अन्नविष।

विसुचिका, अलसक, विलम्बिका आदि सद्यः अजीर्णज रोगों के अतिरिक्त अतिसार, ग्रहणी, अर्श इत्यादि रोगों का भी प्रमुख हेतु अग्निमान्द्य है।

उपर्युक्त रोगों की चिकित्सा हेतु अधोलिखित अग्निवर्धक द्रव्यों जैसे– चित्रक, हिगु (हिंग), किराततिक्त (चिरायता), जीरक (जीरा), आर्द्रक (आदी), शुण्ठी (सोंठ), मरीच, मुस्तक (मोथा), पिप्पलीमूल व तक्र (मठ्ठा) आदि का प्रयोग कर अग्निमान्द्य व अजीर्ण व्याधियों से तथा इनसे उत्पन्न अनेकानेक व्याधियों तथा उनके उपद्रव्यों से बचा जा सकता है।

उदर विकार में प्राकृतिक आहार चिकित्सा

प्रियतमा त्रिपाठी इन्टर्न बी0एन0वाई0एस0

आहार चिकित्सा – उदर की पीड़ा के दिनों में ऐसे खानपान का सेवन करना चाहिए जो आसानी से पचाया जा सके। चावल, दही या छॉछ, खिचड़ी इत्यादि का सेवन बहुत लाभकारी होता है। सब्जियों के सूप और फलों के रस और अंगूर, पपीता, संतरे जैसे फलों के सेवन से भी उदर की पीड़ा कम हो जाती है। निम्बू पानी का सेवन ज्यादा से ज्यादा करें।

फाइबर युक्त फल और हरे पत्ते वाले शाक–सब्जी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करना चाहिए।

क्या लें – पपीता, सेब, कच्चा या पका केला, संतरा, मौसमी, अंगूर इत्यादि फल अत्यन्त लाभकारी है। हरी सब्जी, नींबू, चुकन्दर, टमाटर, गाजर इत्यादि। छॉछ का प्रयोग उत्तम पेय है। दूध का प्रयोग कम करें। पानी का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करें।

क्या न लें – तले–भूने मसालेदार खानपान का सेवन बिल्कुल भी न करें।

अत्यधिक तीक्ष्ण तथा अम्ल का प्रयोग न करें। बासी भोज्य पदार्थ का सेवन न करें। चाय, कॉफी, तम्बाकू, एल्कोहल इत्यादि का प्रयोग बिल्कुल भी न करें। चिन्ता, तनाव, क्रोध से बचें।

आमज व्याधियो में पंचकर्म चिकित्सा

डा0 अभिनव, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (पंचकर्म)

परिचय आयुर्वेद का प्रथम उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना है परंतु यह स्वास्थ्य आयुर्वेद मे वर्णित नियमो का पालन करने से ही संभव है। आज व्यक्ति आहार विहार के नियमों का पालन समयाभाव में नही कर पा रहा है, जिससे वह विभिन्न व्याधियो से ग्रस्त

हो जाता है। आयुर्वेद मे व्याधियो से ग्रसित होने के विभिन्न कारणों को भलीभांति निर्देश दिए जाने के उपरांत उनकी सम्यक चिकित्सा का भी अत्यंत व्यवस्थित वर्णन है।

आयुर्वेद में पुरुष को स्रोतों का समूह कहा गया है। स्रोतसो के द्वारा शरीर मे परिणाम प्राप्त धातुओं का वहन होता है अर्थात् शरीर को पोषण देने वाले तत्वों को शरीर की विभिन्न कोशिकाओ तक ले जाना और चयापचय की क्रिया में उत्पन्न मल आदि को शरीर से वाहर निकालने के कार्यो का वहन स्रोतसो द्वारा ही किया जाता है। आम दोष इन स्रोतसो को अवरुद्ध कर नाना प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करता है। अतः इस आम को शरीर से बाहर निकालने में पंचकर्म चिकित्सा का प्रयोग अत्यंत लाभकारी होता है।

व्याधियो का कारणः अनुचित या अविधिपूर्वक आहार विहार करने पर अग्नि दूषित हो कर मंद हो जाती है जिससे शरीर मे अपचित आहार रस की उत्पति हो जाती है जिसे आम कहते है। यह विभिन्न गुणों वाला आम दोषों के साथ मिलकर शरीर मे विचरण करते हुए स्रोतों अवरोध कर स्रोतोदुष्टि को उत्त्पन्न करता है और रोगोत्त्पत्ति के लिए स्रोतोदुष्टि आवश्यक माना गया है स्रोतस जब तक प्राकृत अवस्था में रहते है। तब तक रोगों की उत्पति नही होती है स्रोतोदुष्टि के चार लक्षण बताये गये है–

१. अतिप्रवृति (Hyperactivity)
२. संग (Hypoactivity or stagnation)
३. सिराग्रंथी (Obstructive Swelling)
४. विमार्गगमन (Abnormal Activity)

और जिस–जिस स्रोतस मे यह अवरोध उत्पन्न करता है वहाँ यह विभिन्न व्याधियो का जन्म देता है।

आम दोष के शारीरिक लक्षण आम दोष के शरीर में विभिन्न लक्षण पाए जाते है– स्रोतोरोध, बलहानी, गौरव, वायु की उर्ध या अधो मार्ग से असम्यक प्रवृति, आलस्य, अजीर्ण, मुखस्त्राव, पुरीषादी मलों का संग, अरुचि तथा क्लम (थकावट) आदि प्रत्यक्ष होते है।

आम दोष से उत्पन्न होने वाले रोगः अलसक (Acute Intestinal Obstruction), विसूचिका (Cholera or Gastroentritis), प्रवाहिका (Dysentry), अतिसार (Diarrhoea), ग्रहणी रोग (Sprue Syndrome or Malabsorption Syndrome), आमवात (Rheumatoid Arthritis), मधुमेह (Diabetes Mellitus) आदि विभिन्न रोग आम से उत्पन्न होते है।

आम से उत्पन्न व्याधियो में पंचकर्म चिकित्साः आयुर्वेद में पंचकर्म की महत्ता को विस्तार से बताया गया है और कहा जाता है की लंघन पाचन से जो रोग शांत (ठीक) हो जाते है वे दोबारा भी हो सकते है परन्तु पंचकर्म (संशोधन) से शांत किये गये रोग दोबारा नही होते है। आम से उत्पन्न स्रोतोरोध को दूर करने में पंचकर्म आदि शोधन चिकित्सा का अतिमहत्वपूर्ण स्थान है। पंचकर्म चिकित्सा के निम्न घटक है– वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन एवं नस्य के प्रयोग से विभिन्न स्रोतसों से आम को बाहर निकालकर स्रोतसों को प्राकृतिक स्वरुप में पुनः स्थापित कर दिया जाता है, जिससे जठराग्नि दीप्त हो कर चयापचय आदि क्रियाओं को सुचारू रूप से सम्पादित करने लगती है। अतः आमजन्य व्याधियो में पंचकर्म चिकित्सा अत्यंत महत्वपूर्ण है। आमजन्य व्याधियों के कुछ उदाहारण एवं उनकी पंचकर्म चिकित्सा–

1. मधुमेहः स्थूल एवं बलवान मे सर्वप्रथम संशोधन करना चाहिये। कफज प्रमेही में वमन एवं पित्तज प्रमेही में विरेचन का प्रयोग करते है।
2. आमवातः आमवात में दोषों के अधिक होने पर विरेचन एवं क्षार वस्ति का प्रयोग विशिष्ट परिस्थितियों में कराना विशेष लाभकारी रहता है।
3. प्रवाहिकाः मृदु विरेचन द्वारा गुदा मार्ग से आम दोष का निर्हरण कराना चाहिए।
4. ग्रहणी रोगः पक्वाशय में लीन साम दोषों के लिए दीपन औषध व विरेचन कराने का निर्देश दिया है। ग्रहणीगत साम दोष की स्थिति में सुखोष्ण जल या मदनफल, पिप्पली व सर्षप का कषाय देकर वमन कराना चाहिए।

5. अलसकः सर्वप्रथम सैधव लवण व गर्म जल पिलाकर वमन कराना चाहिए। ततपश्चात् स्वेदन और गुदवर्ती के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।
6. विसूचिकाः सर्वप्रथम लंघन तत्पश्चात् विरेचन कर्म का प्रयोग करते है।

रोगोत्पत्ति में प्रथम हेतु अग्निमांद्यता

डॉ0 अमृत गोड बोले जे0 आर0–3 एवं डॉ0 अभिनव, काय चिकित्सा विभाग

शरीर की बल, वर्ण, कान्ति आदि का मूल कारण शरीर गत 'अग्नि' है, भुक्तान्न का पाचन तथा शरीर की पुष्टि एवं जीवन के लिये आवश्यक सम्पूर्ण चयापचयात्मक क्रियाएं अग्नि के अधीन है। 'अग्नि' का तात्पर्य मेटाबोलिज्म फायर से है। जब अग्नि मन्द पड़ जाती है तब शरीर में चयापचय की क्रिया सुचारू रूप से नहीं हो पाती तथा शरीर में कुछ ऐसे तत्व उत्पन्न होने लगते हैं जो शरीर में अनूर्जता तथा दूषी विष उत्पत्ति के कारक होते हैं। इन तत्वों को 'आम' संज्ञा दी जाती है। आयुर्वेद शास्त्र सभी रोगों का मूल इसी 'आम' तत्व को मानता है।

विभिन्न आहार विहार अनियमिततायें 'अग्नि' को मन्द करती है जिसके फलस्वरूप शरीर में 'आम' का संचय होने लगता है जिस कारण शरीर में विभिन्न व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती है।

अग्नि के मन्द होने का लक्षण, भोजन में अरूचि, भूख न लगना, शरीर में गुरूता, भोजन का पाक न होना एव हमेशा सुस्ति रहना।

इन लक्षणों से हम समझ सकते है की हमारे शरीर अन्तर्गत अग्नि मंद हो रही है। अग्नि को मन्द होने से बचाने हेतु हमें निम्न बातों को ध्यान रखना चाहिये –ठण्डा, बासी, गुरू भोजन का सेवन न करें, भोजन के पूर्व अधिक मात्रा जल न पियें, विषम भोजन जैसे 'दही संग मछली' दूध के पदार्थों के साथ ठण्डी तासीर वाले भोज्य पदार्थो। का सेवन न करें, अधिक मात्रा में भोजन न करें, रात्रि जागरण न करें, भूख लगने पर हल्का, सुपाच्य भोजन अल्प मात्रा में ही करें, भोजन करते समय बार–बार शीतल जल का सेवन न करें, काम, क्रोध, भय, शोक आदि मानसिक वेगों को धारण करते हुए भोजन न करें।

उपरोक्त बताये सभी बातों का विचार रखते हुये भोजन करने से शरीरगत अग्नि विषम नहीं होती तथा भोजन का पाक सुचारू रूप से होता है एवं आम की उत्पत्ति नहीं होने पाती।

अतः स्वस्थ रहने का एक ही मूलमंत्र है की हम क्या खा रहे है, कितनी मात्रा में खा रहे है और किस तरह खा रहे है इस पर पूरा ध्यान रखे तभी हम अपना जीवन रोगमुक्त और आनंदमय बनाने में सफल होंगे।

अग्नि एवं विष औषधियां

वैद्य रिंगजिन लामो, असिस्टेंट प्रोफेसर, अगद तंत्र विभाग

विष शब्द ही बिल्कुल सही परिभाषित करना एक बहुत ही कठिन कार्य है। एक ऐसा पदार्थ जो एक स्थिति में खतरनाक हो सकता है और दूसरे स्थिति में कोई नुकसान नहीं पहुंचाता। उदाहरण के लिये लवण का अगर कम मात्रा में प्रयोग किया जाये तो यह शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक है परन्तु यदि इसका अधिक मात्रा में सेवन किया जाये तो यह तीव्र विष का कार्य करता है तथा यह प्राणों के लिये खतरनाक हो सकता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है। कि सभी पदार्थ एक तरह का विष जहर है। औषधि और जहर के बीच कोई सीमा रेखा नहीं है एक औषधि जो अधिक मात्रा में ली जाये वह जहर है और जहर जो कम मात्रा मे ली जाये वह औषध हो सकता हे। आयुर्वेद में कुछ विष द्रव्यों का चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है जैसे कुचला, वत्सनाभ, भिलावा, नीला थोथा आदि।

उपरोक्त विष द्रव्यों का प्रयोग अग्निमांद्य जनित व्याधियों में किया जाता है जैसे आमवात, ज्वर, उदर रोग आदि। इन विष द्रव्यों में आशुकारित्व, उष्ण, तीक्ष्ण आदि गुणों के

कारण विष द्रव्य शरीर में शीघ्रता से व्याप्त हो जाते हैं। इसलिए औषधियों की त्वरित कार्य के लिए बहुत सी औषधियों में विषद्रव्य जैसे कुचला, वत्सनाभ आदि घटक द्रव्य के रूप में होता है। विषद्रव्यों का उपयोग करके औषधियों को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

शरीर में तीन प्रकार की अग्नि जठराग्नि, भूताग्नि तथा धात्वाग्नि होती है। इनमें से जठराग्नि प्रधान है। ये विषद्रव्य अग्नि की वृद्धि कर पाचन, अवशोषण तथा चयापचय को बेहतर कर आम की उत्पत्ति को रोकता है जो कि अधिकतर रोगों का मूल कारण है। जठराग्नि के वृद्धि होने पर भूताग्नि तथा धात्वाग्नि की भी वृद्धि होती है। भूताग्नि तथा धात्वाग्नि की वृद्धि होने पर सूक्ष्म स्त्रोतों में आम का पाचन होता है तथा स्त्रोतोशुद्धि होती है।

इन विष द्रव्यों का प्रयोग शोधन के पश्चात ही करना चाहिये। शोधन करने से विषाक्त प्रभाव नष्ट हो जाते है तथा औषधिय गुणों में वृद्धि होती है।

विष से निर्मित औषधियों का सेवन शीत तथा वसंत ऋतु में करना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में, पैतिक प्रकृति में, गर्भिणी में, बाल, वृद्ध, रूक्ष पुरूषों में इसका सेवन नहीं करना चाहिये। कटु, अम्ल, लवण, तैल, दिवास्वप्न, धूप का सेवन वर्जित है।

अग्निवर्धक योगाभ्यास : अभिषेक कुमार शोध छात्र, प्रो0 अनिल कुमार सिंह

योगाभ्यास के आवश्यक निर्देश इस पत्रिका के अंक 2 में अवश्य देखें।

खड़े होकर किये जाने वाले आसन –

उल्कटासन – दोनों पैरों में 6 इंच की दूरी बनाकर सीधे खड़े हो जाएं, दोनों हाथों को श्वांस भरते हुए कन्धों से उपर चित्रानुसार उठायें और धीरे–धीरे घुटनों को मोड़कर इस प्रकार की अवस्था बनायें, जैसे कुर्सी पर बैठते हैं। धीरे–धीरे श्वांस छोड़ते हुए सामान्य अवस्था में आ जायें।

सावधानी – पैरों में चोट एवं आपरेशन की अवस्था में न करें।

लाभ – गैस, कब्ज एवं अपच की समस्याओं में आराम मिलता है।

बैठकर किये जाने वाले आसन –

वज्रासन – आसन पर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर, दोनों पैरों के अंगूठों को परस्पर मिलाकर, घुटनों को परस्पर मिलाकर रखें, एड़ियों पर बैठ जायें, पैरों के तलवों के उपर नितम्बों को आराम से रखकर कमर, पीठ एवं गरदन सीधा रखें, दोनों हाथों को घुटनों पर रखें।

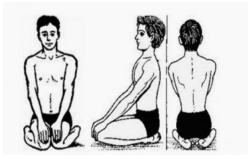

सावधानी – घुटनों के दर्द में न करें।

लाभ – वज्र नाड़ी मजबूत होती है, भोजन के बाद इस आसन में 5 से 10 मिनट बैठने से पाचकाग्नि तेज होती है।

योगमुद्रासन – पद्मासन लगाकर बैठ जायें। दोनों हाथों को पीछे ले जाकर एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई पकड़ें। श्वांस छोड़ते हुए आगे झुकें और माथे को जमीन से लगाएं 5 से 10 सेकेण्ड रोक रखें। श्वांस भरते हुए धीरे–धीरे सीधा बैठें। इसी क्रिया को 3 से 5 बार कर सकते हैं।

सावधानी – कमर दर्द, सर्वाइकल स्पोन्डिलाटिस, घुटनों के दर्द में न करें।

लाभ – जठराग्नि प्रदीप्त होती है, प्राणों को शक्ति मिलती है, पुराना कब्ज दूर होता है।

पाद पश्चिमोत्तनासन – सीधे बैठकर दोनों पैरों को लम्बा फैला दें। दोनों पैर, घुटने, जंघा आपस में मिले रहें एवं जमीन से लगे रहें। दोनों हाथों को पैरों के पास ले जायें। दायें हाथ की पहली अंगुली और अंगूठे से दाहिने पैर का अंगूठा पकड़ें इसी प्रकार बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ें । अब श्वांस छोड़ते हुए

नीचे की ओर झुकें एवं सिर को घुटने से सटा दें। धीरे–धीरे श्वांस भरते हुये उपर उठें। इस क्रम को 3 से 5 बार धीरे–धीरे करें।

सावधानी – कमर दर्द एवं हृदय रोग में न करें।

लाभ – मंदाग्नि, मलावरोध, अजीर्ण दूर होकर भूख बढ़ती है एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन –

1.भुजंगासन – पेट के बल सीधे लेट जाएं। दोनों पैरों की एड़ियों और पंजों को मिलाकर तान दें। दोनों हाथों को कोहनियों से मोड़ते हुये छाती के दोनों ओर सटाकर रखें। माथा जमीन पर सटाकर रखें अब श्वांस भरते हुए धीरे–धीरे सर्वप्रथम माथा उठाएं, कुहनियों को सीधा रखते हुए मेरूदण्ड के मध्य भाग को तानें, पैर मिलाकर ही रखें श्वांस रोक कर 5–20 सेकेण्ड तक रूकें एवं धीरे से श्वांस छोड़ते हुये सामान्य स्थिति में आयें। इस आसन को 5 से 10 बार करें।

लाभ – पाचन क्रिया ठीक रहती है, कमर दर्द में लाभप्रद है, उदर के साथ पीठ की चर्बी कम होती है।

सावधानी – अल्सर, हर्नियां एवं उच्च रक्तचाप में न करें।

नौकासन – सीधे लेटकर हाथों को जंघाओं के ऊपर रखें, दोनों पैरों को मिलाकर रखें। श्वांस छोड़ते हुए गर्दन के साथ दोनों हाथों एवं पैरों को धीरे–धीरे 45 डिग्री तक उठायें। शरीर का सन्तुलन कूल्हों पर रहेगा, श्वांस सामान्य अवस्था में कर लें 10 सेकेण्ड से 25 सेकेण्ड तक इस स्थिति में रूक सकते हैं। वापस आने के लिए पहले गर्दन एवं हथेलियों को यथा स्थान पर वापस लायें एवं पैरों को साथ–साथ जमीन पर रख लें। इस चक्र को 5 से 10 बार करते हैं।

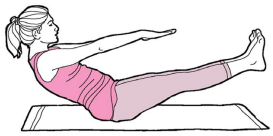

लाभ – जठराग्नि प्रदीप्त होती है एवं अजीर्ण दूर होता है। उदरस्थ सभी अंगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है, अतिरिक्त चर्बी कम होती है।

सावधानी – कमर दर्द, हर्निया एवं उच्च रक्तचाप में न करें।

पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

धनुरासन – पेट के बल लेट जायें। दोनों पैरों को मिलाकर घुटनों से मोड़ें। दोनों हाथों को पीछे ले जाकर दोनों पैरों को टखनों से पकड़ें। श्वास अन्दर भरकर, पैरों को हाथों से पकड़कर उठायें। सिर और शरीर का अगला भाग उपर उठायें। पूरे शरीर का भार नाभि प्रदेश के उपर रहे। 5 से 10 सेकेण्ड रूकने के बाद धीरे से सिर जमीन पर एवं हाथों तथा पैरों को श्वास छोड़ते हुए सामान्य अवस्था में लायें। इसी क्रम को 5 से 7 बार कर सकते हैं।

सावधानी – हृदय रोग में न करें।

लाभ – पाचन शक्ति बढ़ती है, जठराग्नि तेज होती है, कब्ज में लाभ होता है।

पीठ के बल लेटकर करने वाले आसन –

उत्तानपादासन – आसन पर पीठ के बल लेट जायें। हाथ बगल में रख कर श्वांस भरते हुए दोनों पैरों को मिलाकर घुटने सीधे रखते हुए 30 डिग्री पर ले जाकर 5 से 10 सेकेण्ड तक रोकें। श्वांस छोड़ते हुए धीरे–धीरे नीचे लाएं। इसी अभ्यास को 5 से 7 बार धीरे–धीरे 45 से 60 डिग्री पर रोकने का अभ्यास कर सकते हैं।

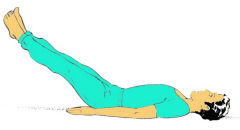

सावधानी – हृदय रोगी न करें।

लाभ – अपच दूर करता है एवं नाभि उतरने में विशेष लाभदायक है।

पवनमुक्तासन – सीधे लेट कर श्वांस भरते हुए सीधे पैर को घुटने से मोड़ दें। दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर घुटने को पकड़कर पेट की ओर दबायें। सिर को उपर छोड़ते हुए सिर एवं पैर को सामान्य अवस्था में लायें। यही क्रम बायें पैर से तथा दोनों पैरों से एक साथ भी 5 से 7 बार करें।

सावधानी – कमर दर्द एवं सर्वाइकल स्पोन्डिलाटिस में न करें।

लाभ – अपान वायु बाहर निकलती है। गैस बनना, कब्ज एवं अफरा दोष दूर होते हैं।

शवासन – सीधे लेट जायें। दोनों पैरों को खोलकर लगभग दो फूट की दूरी बना लें। दोनों हाथों को भी शरीर से अलग लगभग 1 फुट की दूरी पर रखें, हथेलियां आकाश की ओर रहेंगी। सम्पूर्ण शरीर को तनाव रहित, ढीला, शिथिल अवस्था में महसूस करें, श्वास की प्रक्रिया धीरे–धीरे, लम्बा और गहरा श्वास लें एवं छोड़ें। 2 से 5 मिनट इस अवस्था में रहकर बांयी करवट लेते हुए उठकर बैठ जायें। **लाभ** – शरीर में विश्रान्ति एवं मन में प्रसन्नता आती है। उच्च रक्तचाप, तनाव एवं विक्षेप में लाभप्रद है।

क्रियायें –

कुंजल क्रिया – प्रातः काल तीन से चार लीटर गुनगुना पानी लेकर उसमें 2 छोटे चम्मच नमक मिला लें। इस पानी को धीरे–धीरे कर एक साथ पी लें। कटोरा/नाली के पास जाकर कमर तक झुककर खड़े हो जायें तथा बायां हाथ पेट पर रख लें एवं दबायें, दाएं हाथ की प्रथम दो अंगुलियों को गले में ले जाकर जीभ के पिछले भाग पर दबाव डालें, इससे अन्दर से उल्टी होकर सारा जल बाहर निकल जायेगा। तत्पश्चात् आधा घण्टे तक कोई भी सामान न खायें। बाद में खिचड़ी खायें।

सावधानी – नित्य इस किया को न करें, सप्ताह में एक बार कर सकते हैं। उच्च रक्तचाप में न करें।

लाभ – पेट की समस्याओं जैसे – भूख न लगना, खट्टी डकारें, कब्ज में लाभ करती है एवं पाचन क्रिया को बढ़ाती है।

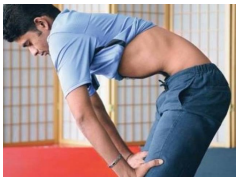

अग्निसार क्रिया – सीधे खड़े होकर पैरों के बीच में एक फुट का अन्तर रखकर आगे की ओर झुकें तथा दोनों हाथों को घुटनों के उपर रख लें। पूरा श्वांस बाहर निकाल दें एवं बाहर ही रोककर रखें। पेट को अन्दर की ओर खींचते हुए पीठ से सटाने का प्रयत्न करें एवं फिर पेट को बाहर लायें। इसके बाद श्वांस भरकर फिर बाहर छोड़ दें एवं पुनः यही प्रक्रिया को 4 से 5 बार कर सकते हैं।

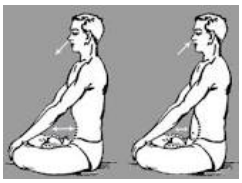

सावधानी – उच्च रक्तचाप एवं कमर दर्द में न करें।

लाभ – मंदाग्नि को दूर करती है, जठराग्नि प्रदीप्त करती है, कब्ज एवं पाचन क्रिया को ठीक करती है।

कपालभाति – अंक 2 में देखें।

प्राणायाम –

सूर्यभेदी प्राणायाम – सुखासन पर बैठकर चित्रानुसार सीधे हाथ की अंगुलियों से बांया नथुना बन्द करके

दांये नथुने से पूरा श्वांस भरें। गर्दन झुकाकर ठोड़ी को गले से सटाकर श्वांस को अन्दर ही क्षमतानुसार रोकें एवं गर्दन सीधी करके बांये नथुने से धीरे–धीरे श्वांस बाहर छोड़ें। पुनः सीधे नथुने से श्वांस भरते हुए इसी प्रक्रिया को 5 से 10 बार कर सकते हैं।

सावधानी – पित्त प्रकृति एवं उच्चरक्तचाप में न करें।

लाभ – जठराग्नि बढ़ाता है, भूख खुलकर लगती है, सर्दी एवं कफ को मिटाता है।

भस्त्रिका – अंक 2 में देखें।

मुद्रायें –

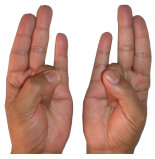

सूर्यमुद्रा – दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियों को हथेलियों की तरफ मोड़े, अंगूठों के अग्रभाग से अनामिका अंगुली के पिछले भाग में दबायें। 10 से 15 मिनट तक अभ्यास कर सकते हैं।

सावधानी – उच्च रक्तचाप में न करें।

लाभ – पाचन शक्ति एवं जठराग्नि को बढ़ाती है।

लिंग मुद्रा – दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर फंसा कर इस प्रकार रखें कि दायें हाथ का अंगूठा उपर की ओर सीधा रहे।

सावधानी – अधिक गर्मी में न करें।

लाभ – भूख बढ़ती है।

बन्ध –

उड्डीयान बन्ध – सुख आसन पर बैठकर पूरा श्वांस बाहर निकाल दें। पेट को भीतर की ओर सिकोड़कर खीचें। पेट के स्थान पर गड्ढा दिखायी पड़ेगा। श्वांस को क्षमतानुसार रोक कर रखें। फिर धीरे–धीरे श्वांस भरें। पुनः श्वांस बाहर छोड़कर इसी क्रिया को 3 से 5 बार कर सकते है।

सावधानी – हृदय के रोगी न करें।

लाभ – उदर की अग्नि विशेष रूप से प्रदीप्त होती है। शरीर की धातुओं की पुष्टि तथा रस की वृद्धि करता है। भूख लगती है एवं कब्ज का नाश होता है।

ध्यान –

मणिपुर चक्र पर ध्यान –

सुखासन पर बैठकर मणिपुर चक्र में जो नाभि में स्थित है, मन को एकाग्र करके अग्नि के बीज मंत्र 'रं' का जप करते हुए ध्यान करें। **लाभ** – अजीर्ण आदि दूर होती है एवं जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

पाचन तंत्र नियमन : पारम्परिक स्वास्थ्य संरक्षण ज्ञान

किस माह में क्या खायें

चैते चना वैशाखे बेल, जेठे शयन अषाढ़े खेल।
सावन हर्रे भादों तीत, क्वार मास गुड़ खावो मीत।।
कार्तिक मूली अगहन तेल, पूस में करो दूध से मेल।
माघ मास घी खिचड़ खाय, फागुन में उठ प्रात नहाय।।

किस माह में क्या न खायें

चैत न गुड़ न वैशाखे तेल, जेठ न पंथ न अषाढ़े बेल
सावन साग न भादो दही, क्वार करेला न कार्तिक मही।
अगहन सौंफ न पूसे जीर, माघे मिश्री न फाल्गुन हींग।।